शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में स्त्री स्वत्व की विश्लेषण

श्रीलक्ष्मी. वी
(शोधार्थी)
महाराजा कॉलेज, एर्नाकुलम-केरल

डॉ. अंजली. एस
(शोध निर्देशिका)
सहायक आचार्या,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं शोध केंद्र
महाराजा कॉलेज एर्नाकुलम -केरल
ई मेल:sreevijayalashmi2540@gmail.com

समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की जो सशक्त धारा विकसित हुई है, उसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है सूर्यबाला का उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' । हिंदी साहित्य के विकासक्रम में स्त्री-जीवन आरंभ से ही कथा-साहित्य का केंद्रीय विषय रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल, विशेषतः सन् 1960 के बाद, हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की जो नई धारा विकसित हुई, उसमें स्त्री का 'स्वत्व' केंद्र में आया। अब वह केवल पीड़िता या त्यागमूर्ति नहीं रही, बल्कि अपने अस्तित्व, अधिकार और आत्मसम्मान के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में उभरी। इसी ऐतिहासिक -सामाजिक पृष्ठभूमि में सूर्यबाला का उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' विशेष महत्व रखता है। यह उपन्यास स्त्री-जीवन की बाह्य समस्याओं से अधिक उसके आंतरिक संसार का अन्वेषण करता है। यहाँ नारी मन की सूक्ष्मतम भावनाएँ, उसकी कामनाएँ, उसके अंतर्द्वंद्व और उसकी मौन आकांक्षाएँ कथा के केंद्र में हैं। उपन्यास का शीर्षक 'संधिपत्र' अपने आप में प्रतीकात्मक है। संधि का अर्थ है समझौता और पत्र का अर्थ है लिखित दस्तावेज। मानो स्त्री का जीवन स्वयं एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें उसने समय-समय पर परिस्थितियों से संधि की है। किंतु यह संधियाँ उसकी कमजोरी का नहीं, बल्कि उसकी परिस्थितिजन्य विवेकशीलता और संबंधों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता का प्रतीक हैं।

नायिका शिवा का जीवन 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास का मुख्य धुरी है। शिवा एक शिक्षित, संवेदनशील और आत्मसम्मान से युक्त स्त्री है| विवाहोपरांत वह एक ऐसे पारिवारिक साँचे में ढलने को बाध्य हो जाती है जहाँ उसे पत्नी, सौतेली बेटियों की माँ और गृहिणी की भूमिकाओं को संतुलित करना पड़ता है। उसके जीवन में बाह्य रूप से कोई अभाव नहीं है| पति का सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक सुरक्षा उसे प्राप्त है। फिर भी उसके भीतर निरंतर एक गहरा अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। वह पहचान लेती है कि उसका जीवन निरंतर समझौतों की शृंखला है|

शिवा का जीवन त्याग और समर्पण से निर्मित है और वह त्याग नि:शब्द है। वह विरोध या विद्रोह का मार्ग नहीं अपनाती क्योंकि उसका शोषण प्रत्यक्ष रूप से कोई नहीं कर रहा। पति उससे प्रेम करता है, सौतेली बेटियाँ उसका आदर करती हैं, परिवार में उसे सम्मान प्राप्त है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं से प्रश्न करती है कि विद्रोह का औचित्य क्या है! यही प्रश्न उसकी चेतना को जटिल बनाता है। वह जानती है कि भीतर उसकी जो स्वतंत्र अस्मिता है वह केवल पत्नी या माँ की भूमिका में सीमित नहीं होना चाहती| वह संबंधों को तोड़कर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा भी नहीं करना चाहती। इस प्रकार उसका संघर्ष बाह्य से अधिक आंतरिक है।

दाम्पत्य संबंधों का चित्रण इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। शिवा और उसके पति का संबंध सम्मान और मर्यादा पर आधारित है| किंतु उनके बीच एक अनुशासनात्मक दूरी भी विद्यमान है। पति का व्यक्तित्व दृढ़ और नियंत्रक है जिसके कारण शिवा अपनी भावनाओं को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाती। शिवा का व्यक्तित्व नए और पुराने मूल्यों के बीच संघर्षरत दिखाई देता है। वह आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री है और पारिवारिक परंपराओं का सम्मान भी करती है। वह आत्मसम्मान रखती है, परंतु अहंकार नहीं। वह सहनशील है, परंतु आत्महीन नहीं। उसके जीवन में विद्रोह का अभाव है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह निर्बल है। सहनशीलता उसकी शक्ति है क्योंकि वह परिस्थितियों को समझकर संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है। इस संदर्भ में शिवा भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधि चरित्र बन जाती है जो संबंधों की रक्षा करते हुए भी अपने भीतर एक स्वतंत्र चेतना को जीवंत रखती है।रिंकी, ऋचा, रत्ना जैसे स्त्री पात्र उपन्यास में पीढ़ियों के अंतर और बदलते मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। रिंकी जो शिवा की सौतेली बेटी है, नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है। उसे लिंग्विस्टिक्स का द्विवर्षीय फैलोशिप प्राप्त होती है तो वह ब्रिस्टल चली जाती है| तब उपन्यास में विदेशी स्त्री पात्रों का प्रवेश होता है। यहीं से भारतीय और पाश्चात्य स्त्री-जीवन की तुलनात्मक दृष्टि उभरती है। ब्रिस्टल में रहने वाली स्त्रियाँ सामाजिक बंधनों से अपेक्षाकृत मुक्त दिखाई देती हैं। उनके जीवन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक स्पष्ट है।

सेरों रॉबिन्स ब्रिस्टल की लाइब्रेरी में असिस्टेंट है। पैंतालीस वर्ष की आयु में भी वह तीसरे नवविवाहित पति के साथ मदहोशी और उल्लास का जीवन जीती है। उसके जीवन में विवाह कोई अंतिम संस्था नहीं, बल्कि व्यक्तिगत संतोष का साधन है। वह सामाजिक आलोचना से निर्भीक है। इसके विपरीत शिवा के लिए विवाह जीवन-पर्यंत निभाया जानेवाला नैतिक दायित्व है। यह तुलना भारतीय स्त्री की सहनशीलता और पश्चिमी स्त्री की आत्मकेंद्रित स्वतंत्रता के बीच के अंतर को उजागर करती है। ग्रेटा अस्टिन एक अन्य विदेशी स्त्री पात्र है जो विचारप्रधान और आत्मविश्वासी है। वह अपने दूसरे पति से तलाक लेकर पचास वर्ष की आयु में भी स्वयं को नई ऊर्जा के साथ प्रस्तुत करती है। वह व्यवस्थित और निश्चित जीवन जीती है किंतु उसमें आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता स्पष्ट दिखाई देती है। उसकी दृष्टि में जीवन का पुनर्निर्माण संभव है; आयु कोई बाधा नहीं। इसके विपरीत भारतीय संदर्भ में विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह अब भी जटिल सामाजिक समस्या है। इस प्रकार ग्रेटा का चरित्र सामाजिक संरचनाओं की भिन्नता को रेखांकित करता है। मिसेज बनार्ड विधवा होकर भी अपने व्यक्तित्व और रूप-रंग के प्रति सजग है। वह मेकअप और वेशभूषा में रुचि रखती है और सामाजिक जीवन में सक्रिय रहती है। भारतीय समाज में विधवा का जीवन प्रायः संयम और त्याग से जोड़ा जाता है, जबकि पाश्चात्य परिवेश में वह आत्मकेंद्रित और स्वतंत्र है। मिसेज अंडरवुड एक प्रौढ़ वृद्धा है जो जीवन को व्यापक और उदार दृष्टि से देखती है। वह जीवन की प्रत्येक वस्तु को संजोने और बाँटने की प्रवृत्ति के आदी है।

उसके भीतर अनुभव की परिपक्वता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। मार्टिन अविवाहित और स्वच्छंद जीवन जीने वाली स्त्री है। उसके अनुसार अपने ढंग से न जीना जीवन के प्रति अन्याय है। वह किसी सामाजिक दबाव के अधीन नहीं है और अपनी इच्छाओं को खुलकर व्यक्त करती है। इस प्रकार विदेशी स्त्रीपात्र नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित और सामाजिक प्रतिष्ठा के पारंपरिक मानदंडों से परे जीवन जीने की आकांक्षा रखती हैं। उनका जीवन बोल्ड और आत्मकेंद्रित है।इन विदेशी पात्रों के माध्यम से उपन्यास में एक तुलनात्मक विमर्श उपस्थित होता है। एक ओर शिवा है, जो संबंधों को निभाने में विश्वास करती है और अपने जीवन को 'संधियों की श्रृंखला' मानती है| दूसरी ओर वे स्त्रियाँ हैं, जो संबंधों को बदलने, तोड़ने और पुनर्निर्मित करने की स्वतंत्रता रखती हैं। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि कौन-सा जीवन अधिक उचित है, बल्कि यह कि स्त्री की स्वतंत्रता की परिभाषा समाज के अनुसार कैसे बदलती है। भारतीय संदर्भ में स्वतंत्रता संबंधों के भीतर संतुलन खोजने में है जबकि पाश्चात्य संदर्भ में स्वतंत्रता आत्मनिर्णय और व्यक्तिगत संतोष में निहित है।

उपन्यास इस तथ्य को रेखांकित करता है कि स्त्री-विमर्श केवल बाहरी शोषण का प्रश्न नहीं है। शिवा का जीवन बाह्य रूप से संतुलित है किंतु आंतरिक स्तर पर वह निरंतर स्वयं को टटोलती रहती है। विदेशी स्त्रियाँ बाह्य रूप से स्वतंत्र हैं, किंतु उनके जीवन में भी स्थायित्व और संबंधों की गहराई का अभाव दिखाई देता है। इस प्रकार लेखिका ने किसी एक जीवन-पद्धति का समर्थन न करती हुई दोनों की सीमाएँ और संभावनाओं को उजागर करने में सक्षम होती हुई दिखाई देती है |

'मेरे संधिपत्र' समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें स्त्री न तो केवल शोषित है और न ही अति-आक्रामक विद्रोही। वह संवेदनशील, विवेकशील और आत्मसम्मान से युक्त व्यक्ति है जो अपने जीवन की जटिलताओं को समझती हुई उनका सामना करती है। सूर्यबाला ने इस उपन्यास में स्त्री-मन की गहराइयों को अत्यंत मार्मिक और यथार्थपरक शैली में उद्घाटित किया है। शिवा, रिंकी, ऋचा और रत्ना जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि स्त्री का जीवन केवल व्यथा-कथा नहीं, बल्कि आत्मसंघर्ष, संतुलन और आत्मबोध की सतत प्रक्रिया है।

इस प्रकार 'मेरे संधिपत्र' स्त्री-विमर्श की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है, जो यह प्रतिपादित करती है कि परिवर्तनशील समाज में स्त्री का आंतरिक परिवर्तन भी उतना ही आवश्यक है जितना बाह्य सामाजिक परिवर्तन। यहाँ स्त्री की शक्ति उसके मौन, धैर्य और आत्मसम्मान में निहित है। यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह स्त्री के सूक्ष्म, जटिल और बहुआयामी व्यक्तित्व को पूर्ण गरिमा और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। इसमें स्त्री के विविध रूप—सहनशील, आत्मसंघर्षरत, स्वच्छंद, विचारप्रधान, परिपक्व और भावुक— एक साथ उपस्थित हैं। सूर्यबाला ने स्त्री को न तो एकांगी रूप में प्रस्तुत किया है और न ही किसी आदर्श के साँचे में ढाला है। उन्होंने उसे उसकी समस्त जटिलताओं, संवेदनाओं और विरोधाभासों सहित चित्रित किया है, यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धी है । यह स्त्री-विमर्श को जीवन की ठोस परिस्थितियों से जोड़ता है और भारतीय तथा पाश्चात्य संदर्भों में स्त्री-अस्तित्व की भिन्न-भिन्न संभावनाओं को सामने लाता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-
1. सूर्यबाला. मेरे संधि पत्र ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2019
2.गुजराल, तरसेम. सूर्यबाला साक्षात्कार के आईने में,अमन प्रकाशन,कानपुर,2017
3. खड़से, दामोदर. सूर्यबाला का सृजन संसार,अमन प्रकाशन,कानपुर,2017
4.https://www.drmullaadamali.com/

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ

डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

संजीव कुमार वर्मा
शोधार्थी
एमफिल. नेट, JRF (हिन्दी)

सारांश: हिंदी दलित साहित्य भारतीय समाज की उस ऐतिहासिक वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है जिसे सदियों तक मुख्यधारा के साहित्य और विमर्श में हाशिये पर रखा गया। इस साहित्यिक परंपरा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का योगदान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। उनका साहित्य दलित समाज के जीवनानुभवों, सामाजिक अपमान, जातिगत भेदभाव, आर्थिक शोषण तथा नारी उत्पीड़न की समस्याओं को प्रत्यक्ष और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि का लेखन सहानुभूति या दया पर आधारित नहीं है, बल्कि वह स्वयं भोगे गए यथार्थ से जन्म लेता है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' में वर्णित अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि दलित जीवन का यथार्थ कितना अमानवीय और पीड़ादायक रहा है। वाल्मीकि स्वयं स्वीकार करते हैं कि "दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, बल्कि प्रतिरोध का साहित्य है" ("दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र", वाल्मीकि, 1997)। इस शोध-लेख में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त जातिवाद, दलित जीवन और नारी उत्पीड़न की समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि उनका साहित्य सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप है।

मुख्य शब्द: दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जातिवाद, दलित जीवन, नारी उत्पीड़न, दलित चेतना

प्रस्तावना: हिंदी साहित्य की परंपरा लंबे समय तक सवर्ण दृष्टिकोण से संचालित रही, जिसमें दलित समाज के यथार्थ को या तो अनदेखा किया गया या करुणा के सीमित दायरे में बाँध दिया गया। दलित साहित्य ने इस दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी चेतना के प्रतिनिधि लेखक हैं। वे मानते हैं कि "जब तक साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा नहीं होता, तब तक उसका कोई नैतिक मूल्य नहीं" (वाल्मीकि, 1997)। उनका लेखन जाति-व्यवस्था को केवल सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि सत्ता की संरचना के रूप में उजागर करता है।

मुख्य विषय: ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में जातिवाद एक केंद्रीय समस्या के रूप में उपस्थित है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' दलित जीवन की पीड़ा का जीवंत दस्तावेज है। इसमें वर्णित अनुभव यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार दलित व्यक्ति को बचपन से ही अपमान और बहिष्कार झेलना पड़ता है। विद्यालय जैसे आधुनिक संस्थान भी जातिगत भेदभाव से मुक्त नहीं थे। वाल्मीकि लिखते हैं—"हमारे लिए स्कूल भी एक सजा था, जहाँ हर दिन अपनी जाति का अहसास कराया जाता था" ("जूठन", वाल्मीकि, 1997)। यह कथन यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा जैसी संस्था भी दलितों के लिए मुक्ति का साधन नहीं बन सकी। जातिवाद केवल सामाजिक व्यवहार नहीं, बल्कि मानसिकता का निर्माण करता है। वाल्मीकि के साहित्य में सवर्ण समाज की वह